6425

तित्थयर

अक्टूबर १९९२
षोड़श वर्ष : षष्ठ अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १६ : अंक ६

अक्टूबर १९९२

☐

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

वीरचंद राघवजी गांधी १६३

ध्यान : चित्त की एकाग्रता की कसौटी के लिए १६७

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १७३

संकलन १८८

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या १८६

शिकागो विश्व धर्म महासम्मेलन (१८९३) में
वीरचंद राघवजी गाँधी

वीरचंद राघवजी गांधी

श्री मदनकुमार मेहता

सर्वप्रथम शिकागो विश्व धर्म-सम्मेलन शताब्दी महोत्सव के इस पुनित प्रसंग पर, मैं स्वामी विवेकानन्द को श्रद्धा सुमन समर्पित करने के साथ जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले महाप्रज्ञ, महादार्शनिक तथा विधिवेत्ता वीरचन्द गांधी का भी पुण्य स्मरण कर समस्त जैन समाज की ओर से भावांजलि समर्पित करता हूँ जिन्होंने शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन में अपने अभिभाषणों से भारतीय दर्शनों की विशालता और चिन्तन की गहनता की समुपस्थित प्रतिनिधियों और अमेरिकन जनता पर अमिट छाप छोड़ी।

आज से ढाई सहस्र वर्ष पूर्व जो वाणी सन्त कन्फ्युसियस के रूप में चीन की गिरिमालाओं में गुंजारित हुई थी, जो वाणी तथागत बुद्ध के रूप में वैशाली के हाट-चौहाट व चतुष्पथों में उद्घोषित हुई, जो वाणी तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के रूप में राजगृह के विपुलाचल पर दिव्यनाद व घन-गर्जन-सी बरस पड़ी थी :

अप्पा कत्ता विकत्ता य सुहाणयं दुहाणयं।

आत्मा ही स्वयमेव सुख और दुःख का कर्त्ता और भोक्ता है। वही वाणी शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में वीरचन्द गांधी के द्वारा प्रतिध्वनित हुई। विश्व हतप्रभ चकित व विस्फारित नेत्र रह गया।

वीरचन्द गांधी ने कहा सर्वप्रथम मैं अमेरिका के समस्त भाई और बहनों का अभिवादन करता हूँ। मैं भारत के ३३ करोड़ सुपुत्र और सुपुत्रियों की ओर से आपको अभिनन्दित करता हूँ। मैं उनकी ओर से शान्ति, स्नेह, विश्वबन्धुत्व, करुणा व सह-अस्तित्व की उदात्त भावनाओं को अपने साथ लाया हूँ। अतीत काल से भारत सदैव मैत्री व सह-अस्तित्व की पुनित भावना को प्रवाहित व प्रसारित करता आ रहा है। अपने दर्शन, चिन्तन व ज्ञान गरिमा से विश्व का पथ प्रदर्शन करता आ रहा है और उसकी क्रोड़ में आकर विश्व ने चिरन्तन सुख एवं शान्ति का अनुभव किया है। प्रज्ञा के क्षेत्र में भारतीय दर्शन की विविध धाराओं को नवीन दृष्टि से जाना, परखा व कृतकृत्य हुआ।

वीरचन्द गांधी के अभिभाषणों की अमेरिकन जनता ने बहुत ही प्रशंसा की। समागत प्रतिनिधियों और वहाँ की जनता पर उनके गहन ज्ञान, भव्य

व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी। तत्कालिक अमेरिकन प्रेस व मूर्धन्य दार्शनिकों ने उस युवा प्रतिनिधि की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसके पश्चात् तो उनके पास चर्चों, थियोसोफिकल सोसाइटियों व संस्थानों की ओर से आमन्त्रण आने लगे।

विश्व धर्म सम्मेलन में संसार के सभी धर्मों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। उसमें करीब दस हजार से अधिक प्रतिनिधि समवेत हुए थे। जिनमें अनेक तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान, दार्शनिक व धर्मनेता भी थे। इस परिषद में भारत के प्रसिद्ध विद्वान, योगी, सन्यासी स्वामी विवेकानन्द तथा डॉ० एनी बेसेन्ट ने भी भाग लिया था। एक हजार से अधिक निबन्ध विविध धर्मों के प्रतिनिधियों द्वारा पढे गये थे।

यह परम आश्चर्य का विषय है कि स्वामी विवेकानन्द व श्री वीरचन्द गांधी समवयस्क थे। स्वामी विवेकानन्द एक परिव्राजक, सन्यासी तथा योगी के साथ-साथ वेदान्त के महापण्डित तथा अधिवक्ता थे। वीरचन्द गांधी भी एक विधिवेत्ता के साथ-साथ भारतीय दर्शन तथा साहित्य के निष्णात विद्वान थे। दोनों की वेशभूषा में भी समानता थी। विवेकानन्द राजस्थानी साफा व अंगरखा के परिवेश में थे तो वीरचन्द गांधी गुजराती पगड़ी व चद्दर में परिवेष्टित थे। वे उपस्थित प्रतिनिधियों में अपना अलग ही व्यक्तित्व परिलक्षित करते थे।

विश्वधर्म सम्मेलन में जैन दर्शन के अनेकान्त सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा—महावीर की अनेकान्त दृष्टि, जाति, कुल के मद को दूर कर समता की भावना, जातीय एकता, सहिष्णुता और सर्वधर्म समभाव की गंगा प्रवाहित कर जन-जन का परम कल्याण करने वाली है। सभी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भेदभावों को व विषमता के संघर्ष को नष्ट करने का उपाय अनेकान्त दृष्टि में खोजा जा सकता है। महावीर के इस समन्वयकारी व पारस्परिक मनमुटाव को दूर करने वाली सर्वोदयी सिद्धान्त की अत्यन्त आवश्यकता है। अनेकान्त अन्तरराष्ट्रीय एकता की दृष्टि से तीन प्रकार से योग दे सकता है :

१. वैचारिक संघर्षों का निराकरण
२. वैचारिक समन्वय
३. वैचारिक उदारता

इसमें सह-अस्तिव के उदार भाव छिपे हुए हैं। वे कहते हैं—मेरा किसी के प्रति वैर नहीं।

अतः जैन चाहता है विषमताओं में हम समता की साँस लें। वैचारिक सहिष्णुता स्थापित हो, सब एक दूसरे को समझें और प्रश्रय दें। एक ऐसे विश्व की रचना हो जिसमें न वैर हो न विरोध हो।

उन्होंने जैन धर्म के अहिंसावाद, आत्मवाद और कर्मवाद के सिद्धान्तों पर तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में बहुत सूक्ष्मता के साथ प्रकाश डाला। जिसको सुनकर अमेरिकन जनता जैन धर्म की गहनता और व्यक्तित्व-विकास की प्रक्रिया को समझ सकी।

वीरचन्द मात्र जैन दर्शन के ही ज्ञाता न थे परन्तु वे भारतीय सर्व दर्शन की विविध धाराओं के गहन ज्ञाता तथा प्रवक्ता थे। पाश्चात्य दर्शन तथा क्रिश्चियेनीटी पर भी धारा प्रवाह बोलते थे। वे चौदह भाषाओं के ज्ञाता थे। उनके अभिभाषणों को सुनकर उपस्थित श्रोता-समूह अभिभूत हो जाता था। वाणी में अवर्णनीय मिठास, भाषा पर अधिकार व विषम वस्तु के विश्लेषण की क्षमता तथा नेत्रों से निकलने वाली ज्योतिर्मयी किरणें श्रोता समूह के अन्तर को स्पर्श कर देती थी।

तत्कालीन अमेरिकन पत्रों ने लिखा—विश्व धर्म सम्मेलन में अनेक सुप्रसिद्ध हिन्दू स्कॉलर, दार्शनिक, धर्माध्यापक सम्मिलित हुए थे तथा उन्होंने धर्म सभा को उद्‌बोधित भी किया था। उनमें से अनेक उच्च श्रेणी के विद्वान थे जो अपनी ज्ञान गरिमा में विश्व के मूर्धन्य दार्शनिकों के समकक्ष थे परन्तु एक युवा प्रतिनिधि वीरचन्द ने जैन दर्शन के सिद्धान्तों को सुन्दरता के साथ प्रतिपादन कर अमेरिकन जनता तथा श्रोता समूह को सम्मोहित कर लिया।

विश्व धर्म सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् भी वे अमेरिकन जनता के अनुरोध पर दो वर्ष पर्यन्त भिन्न-भिन्न विषयों पर वाक्‌धारा प्रवाहित करते रहे। उनके अभिभाषणों को सुनने के लिये बिना किसी लिंग भेद के अमेरिकन स्त्री पुरुष समवेत होते थे। जैन दर्शन के अतिरिक्त विविध स्थानों पर उनके निम्न विषयों पर भी अभिभाषण हुए—

१. प्राचीन भारतीय साहित्य
२. हिन्दू जगत् का प्रारम्भिक जीवन
३. भारत में स्त्री जाति का स्थान
४. भारत में विवाह पद्धति और उसका महत्त्व
५. ३० करोड़ भारतीय जनता के सामाजिक रीति-रिवाज

उनके अभिभाषणों को अमेरिकन प्रेस ने प्रमुखता से प्रकाशित किया तथा मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

१८६५ में वीरचन्द गांधी पुनः भारत लौट आये। यहाँ आने पर उनका भव्य स्वागत हुआ तथा स्थान-स्थान पर उन्हें अभिनन्दन-पत्र समर्पित किये गये।

भावनगर के पास महुआ ग्राम में जन्मे वीरचन्द गांधी विश्वविख्यात व्यक्ति बन गये। उन्हें पुनः पाश्चात्य देशों ने आमन्त्रित किया। वे समस्त यूरोपीय देशों में परिभ्रमण कर अपने भाषणों से जनता को अभिभूत करते रहे। लंदन से उन्होंने Bar-at-Law भी किया परन्तु स्वास्थ्य अनुकूल न रहने से वे पुनः भारत लौट आये। परन्तु समाज का दुर्भाग्य था यह नररत्न ७ अगस्त १६०१ में इस नश्वर देह को त्याग कर ३७ वर्ष की अल्प वय में ही स्वर्गवासी हो गया।

मुझे भगवान् शंकराचार्य की भी स्मृति आ रही है जो कि भारत में वैदिक धर्म का प्रचार कर, स्तवनादि के अलावा प्रस्थानत्रयी पर अपना भाष्य लिखकर ३२ वर्ष की लघु वय में ही अनन्त में विलीन हो गए। स्वामी विवेकानन्द भी मात्र ३६ वर्ष की अवस्था में विश्व में अद्वैत की चर्चा कर, सेवा का राजमार्ग प्रशस्त कर १६०२ में महाप्रयाण कर गये। इन महान् आत्माओं को कोटिशः प्रणाम !

शिकागो विश्व धर्म-सम्मेलन शताब्दी महोत्सव पर प्रदत्त भाषण की प्रतिलिपि

ध्यान : चित्त की एकाग्रता की कसौटी के लिए

महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

महावीर का वचन है : जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है, वैसे ही समाधि में लीन होने पर चित्त विकल्पों से मुक्त हो जाता है।

लवण व्व सलिल जोए, झाणे चित्तं विलीयए जस्स।
तस्स सुहासुहडहणो, अप्पाअणलो पयासेइ ॥

वास्तव में चित्त मन की क्रियाशीलता का नाम है। मनुष्य के द्वारा जो कुछ भी होता है, उसके सारे निर्देश और इशारे मन के द्वारा ही होते हैं। इसलिए मनुष्य का जैसा मन होगा, उसके समस्त बरताव उसी के अनुरूप होंगे। जीवन-स्वास्थ्य के लिए न केवल स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है वरन् स्वस्थ मन की भी जरूरत है। मन की स्वस्थता शरीर के हर क्रियाकलाप के प्रति प्रभावी होती है; इसलिए जीवन-परिवर्तन के सारे क्रांति-सूत्र स्वयं मनुष्य के भीतर से आएंगे। जीवन के दृश्य बाहर हो सकते हैं, लेकिन जीवन की जीवंतता तो हर कीमत पर भीतर से ही जुड़ी है। वही परिवर्तन जीवन के लिए कुछ मूल्य रखता है जो भीतर से आता है, ऊपर से आने वाला हस्त-क्षेप कोई परिवर्तन नहीं ला सकता, वह अन्दर से आएगा।

संसार का सारा फैलाव तो बस इन्द्रियों के उद्घाटन एवं उनकी गत्यात्मकता पर निर्भर है। पलक खुले तो सारा जहां आँखों में उतर आएगा। पलकें झुका लो, तो और तो और खुद को भी नहीं देख पाओगे। हाथ-पाँव सब हमसे जुड़े रहेंगे पर बन्द आँखों के सामने बहुत कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होता। इन्द्रियां तो मात्र मीडिया हैं। मूल एजेन्सी तो भीतर है, इसलिये अगर एजेन्सी ही बिगड़ गई तो सब कुछ बिगड़ा ही समझो। आँख-कान अच्छे हों पर मन खराब हो तो देखने और सुनने का काम अच्छा कैसे होगा? यदि किसी के मन के विचारों में कामुकता के विचार हैं, तो वह अगर पुरुष है, तो स्त्री को देखते ही कामातुर हो उठेगा। ऐसे ही अगर स्त्री है, तो पुरुष को देखकर। जिसके मन में "सेक्स" की भावना नहीं, वह पूरे "सेक्सी एटमॉस्फियर" में जाकर भी उससे अप्रभावित ही रहेगा। इसी तरह क्रोध किये जाने पर यह कहा जाएगा कि उसके मन में क्रोध था। हर अभिव्यक्ति की पूर्व संभावना निश्चित तौर पर व्यक्ति की मानसिकता होती है। मनोशुद्धि या चित्तशुद्धि की अनिवार्यता इसीलिए है ताकि मनुष्य की हर अभिव्यक्ति

और गतिविधि शुद्ध, सभ्य और संस्कारित हो। यद्यपि मनुष्य की सारी गति-विधियाँ इन्द्रियों के द्वारा निष्पन्न और संपादित होती हैं पर उनका अच्छा और बुरा होना मन पर निर्भर है।

ध्यान का उपयोग मन की शुद्धि के लिए तो है ही, उसकी एकाग्रता की कसौटी के लिए भी है। भटकता मन रुग्ण है और शांत मन, स्वस्थ। मन की उच्छृंखलता ही पागलपन का कारण बनती है। चूँकि सब कार्यों का स्रोत और निर्देशक मन है इसलिए मन का परीक्षण आत्यन्तिक जरूरी है।

चित्त की चंचलता की कसौटी के लिए ध्यान दैनन्दिनी परीक्षा है। मन का परिवीक्षण और परीक्षण ही वह मार्ग है, जिससे मनुष्य उन गतिविधियों से मुक्त हो सके, जो मुझे निष्ठ नहीं है। ध्यान करो तब ही चित्त की वस्तुस्थिति को देख-पढ़ सकोगे। चित्त की एकाग्रता की कसौटी ध्यान में ही संभव है। ध्यान हो ऐसा कि जिसमें किसी भी तरह का विकल्प और आलंबन न हो। महावीर ने ऐसा ही ध्यान किया था। उनका ध्यान विकल्प मुक्त तो था ही संकल्प-मुक्त भी था। वास्तव में संकल्य भी विकल्पों का ही एक सभ्य विकल्प है।

महावीर ने आलम्बन भी किसी का नहीं लिया। वे तो अवलान्त आकाश की भाँति निरालम्ब थे। वैसे भटकते मन को एकाग्र करने के लिए प्राथमिक तौर पर किसी का आलम्बन लिया जा सकता है। वह मदद अवश्य करेगा। आलम्बन लेना हो तो किसी का भी ले सकते हो। मन्दिर में बैठकर मूर्ति का, झरने पर बैठकर जलधारा का, सागर के तट बैठे हो तो जल तरंग का, जंगल में बैठे हों तो वृक्ष का और घर में बैठे हों तो दीये की जोत का। कोई साधन न बैठे तो जेब में रखी पेंसिल को भी आलम्बन बना सकते हैं। एकाग्रता के लिए मात्र आलम्बन चाहिए, जो रूच जाये, चित्त की एकाग्रता उसी में केन्द्रित हो जाती है।

"संकीर्तन" या "संगीत" चित्त की एकाग्रता के लिए बेहद उपयोगी है। निश्चित तौर पर संगीतपूर्वक संकीर्तन करने से चित्त में एकाग्रता आएगी। चूँकि संगीत में चित्त को उसका विषय मिल जाता है, इसलिए वहाँ एकाग्रता सध जाती है। ध्यान, चित्त की एकाग्रता के लिए नही वरन् उसकी एकाग्रता की कसौटी के लिए है। जाप और पाठ से एकाग्रता सधेगी पर उस एकाग्रता की परीक्षा तो ध्यान में ही होगी। ध्यान के मायने हैं चित्त को देखना। आत्मध्यान के लिए साधक को सबसे पहले तो यह देखना पड़ता है कि शरीर

के साथ स्वयं की कितनी आसक्ति है। अकेले शांत बैठकर जब तक शरीर और आत्मा के बीच के तादात्म्य का ध्यान न करोगे तब तक कैसे जान पाओगे कि दोनों के बीच का गठबंधन किस अनुपात में है। ऐसे ही ध्यान में विचारों को भी देखना होता है, इसलिए ध्यान सर्वेक्षण की दृष्टि है।

हमारे मन में न जाने कितने विचारों का ऊहापोह मचता रहता है। विचार हजारों तरह के आते हों ऐसा भी नहीं है। विचार चलते हैं कोल्हू के बैल की तरह। जब हम अकेले बैठे हों तब अधिकतम चौबीस तरह के विचार आएँगे। अनुबन्ध के मार्ग पर तो विचार एक के बाद एक चलते ही रहते हैं परन्तु परस्पर विरोधाभासी विचार कम आते हैं। विचारों को यात्रा के लिऐ चाहिए अनुबन्ध एक से दूसरे का कनेक्शन। चित्त में विचारों की अन्तहीन सम्भावनाएं छिपी हुई हैं। चित्त का सारा समाज परमाणुओं से बना-बिखरा है। यह संसार की सबसे सूक्ष्मतम परमाणविक रचना है। सबसे सूक्ष्म किन्तु सबसे तीव्र। चित्त में जब विचार का एक परमाणु अपना मुँह खोलता है तो उसकी पदचाप से चित्त का दूसरा वैचारिक परमाणु सक्रिय हो जाता है। तीसरे को उत्प्रेरित कर देता है। इस प्रकार चित्त की सूक्ष्म ऊर्जा का वैचारिक संचरण चलता रहता है, पर एक खास बात कि विचार का जैसा पहला परमाणु होगा, अपने अनुबन्ध और प्रवाह के लिए वह अपने ही सहयोगी वैचारिक परमाणु को संचरित करेगा।

मानों अच्छे भाव का कोई एक परमाणु जगा तो दूसरा परमाणु स्वतः वहीं जगेगा, जिसके अस्तित्व में अच्छाई की कहीं कोई संभावना है। अच्छे विचारों का यह प्रवाह तब तक चलता रहेगा, जब तक संभावित अच्छे परमाणुओं का उसे सहचर्य मिलता रहेगा। यह भी संभव है कि क्षमा के सम्बन्ध में विचार उठ रहे हों और गलत वातावरण को देखकर तत्क्षण विचार क्रोध से तमतमा उठें, ऐसे प्रसंगों का अर्थ यह हुआ कि चित्त का ऐसा कोई न कोई सशक्त परमाणु अच्छे वैचारिक परमाणुओं के ओट में बैठा था, जो प्रसंग मिलते ही प्रकट हो गया।

चित्त की विचार-यात्रा कैसे चलती है, इसे समझें। मान लीजिए हम एकांत में बैठे हैं, मन अपनी धुन में कुछ गुनगुना रहा है तभी हमें कोयल की "कुहु-कुहु" सुनाई देती है। उस आवाज को सुनकर बीते समय की कोई बात तरोताजा हो उठती है कि ऐसी ही आवाज मैंने पाँच साल पहले मैसूर में सुनी थी। मैसूर का ध्यान आते ही वहाँ के "वृन्दावन-गार्डन" की याद आ

गई। गार्डन की याद आई तो फूलों की भी याद हो आई। आह! कितने सुन्दर सुरक्षित-महकते फूल थे वे। तभी यह विचार भी दिमाग में हो आया कि उसने वहाँ ऐसे दो फूल तोड़ लिए थे, जो साल में केवल दो बार ही खिलते थे। जब फूल तोड़ने की याद आई तो यह भी विचार हो उठा कि तब माली ने उसे टोका था। उसके दोस्त के बीच-बचाव करने पर केवल दस रुपये के जुर्माने में ही बला टल गई। अब चित्त के वे परमाणु जग उठे हैं जिनका सम्बन्ध उस दोस्त के साथ था। अरे हाँ। वो तो कितना प्यारा था। मैं उसके घर ठहरा था, उसकी माँ ने मुझे कितने प्यार से खाना खिलाया। अब माँ की याद हो आई। दोस्त की माँ ने ही तो उसे कहा था कि उसका पति शिकार खेलते समय मारा गया था। ऐसे चलता है विचारों का अनुबंधित प्रवाह। सारे विचार एक-दूसरे से कनेक्टेड हैं।

एक विचार से जुड़ी हुई यात्रा पच्चीस मिनट से ज्यादा नहीं हो सकती। पच्चीस मिनट से ज्यादा कोई भी विचार एकटक जागा खड़ा नहीं रह सकता। एक विचार से जुड़ी हुई यात्रा जैसे ही समाप्त होगी, दूसरे विचार से जुड़ी यात्रा स्वतः प्रारम्भ हो जाएगी। यदि जीने की कला न आए, बुद्धि में विवेक की क्षमता न जग पाये, तो यह विचारों की यात्रा अनर्थक लगातार चलती रहती है।

चित्त के वैचारिक परमाणु भले ही गणना में न आएं पर सारे परमाणु जीवन भर सक्रिय नहीं रह सकते। बिखरे हुए परमाणु तो अन्तहीन होते हैं किन्तु सम्बद्ध (कनेक्टेड) परमाणु अधिक नहीं होते। विचारों की अज्ञात यात्रा, उन्हीं परमाणुओं से दम भर-भरकर चलती रहती है, जिनका परस्पर अनुबंध होता है। अनुबंध दूसरे अर्थों में आसक्ति है। इस अनुबंध का टूटना ही ज्ञात रूप में आसक्ति से ऊपर उठना है।

ऐसा नहीं है कि रोज-रोज नये-नये विचार आते हों। नित नये विचारों का जगना तो जीवन के द्वार पर विज्ञान की पहल है। विचारों का सारा लबादा तो बोदा/पुराना है। भिखारी के कपड़ों की गठरी का रोज-रोज खुलना है। मनुष्य है ऐसा जो जर्रे-जर्रे फटे कपड़े को रोज-रोज सीता है और अतीत की याद को वर्तमान में दोहराता है। इसलिए विचारों की यात्रा "हावड़ा एक्सप्रेस" का दिल्ली से कलकत्ता को रोजाना अप-डाउन होना है।

जीने की कला तो यही है कि व्यक्ति विचारों के उधेड़बुन से ठीक वैसे ही निकल जाये जैसे जंगल के बीच से रेलगाड़ी निकल जाया करती है।

जंगल जहाँ है वह वहाँ पड़ा रहे तुम उससे पार हो चलो। चित्त की परम्पराओं का काम है फुद-फुद होना, वे होना चाहे होने दें। जो मन और विचार से स्वयं को अलग महसूस करता है उसकी कृति, मन के अनुसार न होगी। कैसे भी सब चलेगा जब हम किसी विचार को अपनी अहमियत मानेंगे। इसलिए यह बात दिल में घर कर रखो कि हम मन से अलग हैं।

विचारों का क्या? वे तो जब-तब जोर करते रहते हैं। दिन में करते हों ऐसा नहीं रात में तो पुरजोर करते हैं। स्वप्न विचारों की ही यात्रा है। दिन में कुंठित हुए विचार ही सपनों में उभरते हैं। व्यक्ति को स्वप्न इसलिए आता है क्योंकि व्यक्ति ने अपने विचारों को कुंठित कर रखा है। रात में हम अकेले होते हैं। नींद में व्यक्ति वास्तव में ही निपट अकेला होता है इसीलिए तो नींद बड़ी मीठी होती है। नींद से ज्यादा मिठास और किसी में नहीं है। नींद में सपने आते हैं। जब आँखें बन्द होती हैं, दुनिया से बेखबर होती हैं तब चित्त की वैचारिक सक्रियता और तीव्र गतिपूर्ण हो जाती है। यही कारण है कि ध्यान में भी चित्त चंचल हो जाता है और विचार उठते हैं।

मैं ध्यान के लिए इसीलिए निवेदन/प्रेरणा कर रहा हूं ताकि हम अपने टर्र-टर्र उठने वाले विचारों को देख-पढ़ सकें। स्वप्न में वो जो देखा है उसके प्रति हमारी कोई जागरूकता नहीं होती। ध्यान, शरीर और इन्द्रियों का सोना ही है परन्तु विचारों के प्रति जागना है। इसलिए ध्यान, जागरूकता-पूर्वक की जाने वाली नींद है। शरीर की दृष्टि से यह सोना है लेकिन विचारों की दृष्टि से यह जागना है। यदि स्वप्न को भी जागरूकतापूर्वक देख सको तो वह सोना भी ध्यान ही है। स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रति की यही अर्थ संभावना है।

स्वप्न कभी जागरूकतापूर्वक नहीं लिया जा सकता। नींद से जगने पर स्वप्न के जो विचार या दृश्य हमें याद रह जाते हैं वे तो मात्र स्वप्न के अंश भर होते हैं। मैं तो कहूँगा कि जब स्वप्न से जागो तो अपने स्वप्नों पर गहराई से नजर डालना। स्वप्नों को पढ़ना, वास्तव में चित्त को ही पढ़ना है। स्वप्न, चित्त का जागरण है। चित्त की खराबियों से मुक्ति पाने के लिए उसकी हर गतिविधि को पढ़ना चाहिए यही तो स्वाध्याय है। स्वयं के विचारों को पढ़ना, स्वयं की वास्तविकताओं को पढ़ना है। विचारों की पुनरावृत्ति होती रहती है। इसलिए बुरे विचार भी बार-बार आते रहते हैं और अच्छे विचार भी दुहराते रहते हैं। जीवन की मौलिक चिकित्सा करने

के लिए हमें चित्त की विक्षिप्तता को जड़ से उखाड़ना होगा। हर रोग की दवा है पहले नब्ज तो पकड़ में आये, चित्त को देखना और विचारों को पढ़ना नब्ज को ही पकड़ना और पड़तालना है।

ध्यान, जीवन की इस चिकित्सापद्धति में हमारा सहचर बनेगा। आत्म-परिष्कार के लिए विचारों की शुद्धि और भावों की तटस्थता सर्वाधिक फायदेमंद है। मन में जो भी आए, उसे सतर्कतापूर्वक बड़े प्यार से पढ़ें, ठीक वैसे ही पढ़ें, जैसे किसी महापुरुष के चरित्र या धर्मग्रन्थ को पढ़ते हैं। यह पढ़ना आत्म-निरीक्षण है। हमारा विवेक ही मन में उठने वाले द्वन्द्व को अलग-थलग करेगा। ध्यान के अभ्यास से विकल्पों की भरमार खाली होती जाएगी और तब जो शेष बचेगा स्वभाव में शांति उसी का नाम होगा। अस्तित्व की वास्तविकता का तत्व बोध तभी तो मुखर होगा। तब आत्म ज्योति प्रकट होगी, कर्मों की कलुषता राख होगी और चित्त विकल्प-मुक्त शांति में ठीक वैसे ही लीन होगा जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

उदार हृदयी दशरथ ने आगत् दूत को सम्मानित कर अपने पास बैठाया और बोले, 'चन्द्र से समुद्र जिस प्रकार दूर होता है उसी प्रकार दूर रहने पर भी मेरे मित्र ने जब तुम्हें मेरे पास भेजा है तो इससे तो हमारे मध्य का प्रगाढ़ बन्धुत्व ही सुचित होता है। आशा करता हूँ मिथिलापति के राज्य में, नगर में, कुल में, सैन्यवाहिनी में सर्वत्र कुशल मंगल ही होगा ! वे भी अवश्य स्वस्थ होंगे ! अभी तुम्हारे आने का क्या कारण है ?'

दूत बोला, 'हे महाबाहु, मेरे प्रभु के अनेक आत्मीय है किन्तु स्व-आत्मा से हार्दिक मित्र तो केवल आप ही हैं। राजा जनक के सुख-दुःख को ग्रहण करने की शक्ति तो केवल आपमें ही है। अतः उनके दुःख सुख में आप ही उनकी सहायता कर सकते हैं। इस समय वे अत्यन्त विपन्न हैं। एतदर्थ अपने कुलदेव-से आपको याद किया है। वैताढ्य गिरि के दक्षिण में और चूल हिमवंत के उत्तर में अनेक जनपद हैं जहाँ भयंकर प्रकृति के मनुष्य निवास करते हैं। वहाँ बर्बर कुल की भाँति अर्द्ध-बर्बर देश है जो कि क्रूर आचार युक्त मानवों के कारण अत्यन्त भयंकर है। उसी देश के अलंकार रूप मयूरमाल नगर में आतरंगतम नामक अति प्रबल म्लेच्छ राजा राज्य करता है। उसके हजार-हजार पुत्र है जो स्वयं राजा बनकर शुक, मंकन, कम्बोज आदि देशों का भोग कर रहे हैं। इस समय उसी आतरंगतम ने अक्षौहिणी सेना से परिवृत होकर जनक राजा का राज्य भंग कर दिया है। उन दुराचारियों ने वहाँ के चैत्यादि नष्ट कर दिए हैं। समस्त जीवन भोग कर सकें इतनी सम्पत्ति के अधिकारी होने पर भी वे आकर धर्म में विघ्न डालते हैं जिससे लगता है वे धन नहीं चाहते, धर्म नष्ट करना ही उन्हें अभीष्ट है। हे राजन्, अपने अत्यन्त प्रिय धर्म और राजा जनक की रक्षा करिए।'

दूत की बात सुनकर दशरथ ने उसी क्षण युद्ध यात्रा के लिए रणवाद्य बजवाए। सत्पुरुष, सत्पुरुष की रक्षा में कभी विलम्ब नहीं करते। तभी राम आकर बोले, 'पिताजी, म्लेच्छों का उच्छेद करने के लिए यदि आप स्वयं जाएँगे तो राम तथा उसका अनुज यहाँ बैठकर क्या करेगा ! पुत्र-स्नेह के कारण आप हमें असमर्थ समझ रहे हैं। किन्तु इक्ष्वाकु वंश के पुरुष तो जन्म से ही पराक्रमी होते हैं। एतदर्थ पिताजी आप प्रसन्नता पूर्वक यहीं रहें और

म्लेच्छों के उच्छेद की आज्ञा हमलोगों को दें। कुछ ही दिनों में आप अपने पुत्रों की जयवार्ता सुनेंगे।'

ऐसा कहकर बड़ी मुश्किल से राजा दशरथ की आज्ञा लेकर राम अनुज सहित बड़ी सेना लेकर मिथिला गये। वहाँ उन्होंने म्लेच्छों को इस प्रकार घूमते देखा जैसे महारण्य में चमरू, हस्ती, सिंह आदि घूमते रहते हैं।

जिनकी भुजाएँ युद्ध करने के लिए खुजलाती रहती है, जो स्वयं को विजयी समझते रहते हैं ऐसी म्लेच्छ सेना के सैनिकों ने राम की सेना में उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। प्रबल वायु जिस प्रकार धूल उड़ाकर जगत् को अन्धा कर देती है उसी प्रकार उन म्लेच्छों ने राम के सैनिकों को स्व अस्त्रों से अन्धा कर दिया। उस समय शत्रु और उनकी सेना ने स्वयं को विजयी समझ लिया, राजा जनक स्वयं को मृत्यु के सन्निकट समझने लगे और लोग 'हाय मारे गये' ऐसा मानने लगे।

यह देखकर राम ने तत्काल धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाया और रणनाट्य के वाद्य की तरह उससे टंकार की। तदुपरान्त मृत्यु लोक में अवतरित देव की भाँति भ्रू भंग किए बिना ही अल्प समय में उन्होंने कोटि-कोटि म्लेच्छों को शिकारी जिस प्रकार हरिणों को विद्ध करता है उसी प्रकार उन्हें विद्धकर डाला।

राजा जनक तो बेचारा गाय है, उसकी सेना मक्खी-मच्छर है, उसकी सहायता के लिए आनेवाली सेना तो पहले से ही दीन हो गयी है तब यह गरुड़ की भाँति आकाश को आच्छादित कर देने वाला तीर किसका है? आतरंग आदि राजा परस्पर इसी प्रकार बात करते हुए राम के आगे आए। राम को देखकर विस्मय और क्रोध से भरकर वे राम पर अस्त्र वर्षा करने लगे। अष्टापद जिस प्रकार सिंह को समाप्त कर देता है उसी प्रकार राम ने दूरापाती (दूर से आकर गिरनेवाले), दृढ़ाघाती और शीघ्र भेदी तीरों से लीला मात्र में म्लेच्छों को विनष्ट कर डाला। म्लेच्छगण कौओ की तरह इधर-उधर जिधर जो जा सका भाग छूटे। जनक और पुरवासियों ने स्वस्ति की श्वांस ली।

राम का पराक्रम देखकर जनक ने अपनी कन्या सीता का विवाह राम से करना स्थिर किया। अतः राम के आने से जनक को दो प्रकार के लाभ हुए। एक कन्या के योग्य वर की प्राप्ति, दूसरा म्लेच्छों के उपद्रव का निवारण।

सीता के रूप की चर्चा सुनकर नारद कौतूहल वश उसे देखने के लिए

मिथिला नगरी आए और सीधे कन्यागृह में प्रवेश किया। पीत चक्षु पीत केश, वृहद उदर, हाथों में दण्ड और छत्र लिए, कोपीनधारी, कृश शरीर और दीर्घ शिखा युक्त नारद के भयंकर रूप को देखकर सीता मारे भय के 'ओ माँ' कहती हुयी वहाँ से उठकर भीतरी कक्ष में चली गयी। सीता का चिल्लाना सुनकर दासियाँ दौड़ती हुई आईं और नारद को घेर लिया! वे भी उनका गला, शिखा और हाथ पकड़ कर चिल्लाने लगीं। उनका चिल्लाना सुनकर शस्त्रधारी द्वाररक्षक 'मारो मारो' कहते हुए दौड़कर वहाँ आए। नारद घबड़ा गए अतः किसी प्रकार उनके हाथों से स्वयं को मुक्त कर आकाश में उड़ गए। फिर वैताढ्य पर्वत पर जाकर वे सोचने लगे बाघिनों के मुख से गाय जिस प्रकार बड़ी कठिनता से स्वयं को मुक्त कर सकती है उसी प्रकार उन क्रीतदासियों के हाथ से आज तो मैं भाग्यवश ही मुक्त हो सका हूँ। इस वैताढ्य पर्वत पर अनेक विद्याधर पति रहते हैं। इसी पर्वत की दक्षिण श्रेणी में इन्द्र के समान पराक्रमी चन्द्रगति का पुत्र युवक भामण्डल रहता है। सीता का चित्र बनाकर मैं उसे दिखाऊँ। उसे देखकर वे मुग्ध हो जाएँगे और जबरदस्ती सीता को उठा लाएँगे। इससे सीता ने मेरे साथ जो व्यवहार किया है उसका प्रतिशोध भी ले सकूँगा।

ऐसा विचार कर नारद ने सीता के उस रूप को जिसे इसके पूर्व त्रैलोक्य में भी कहीं नहीं देखा गया चित्रित कर भामण्डल को दिखाया। उस रूप को देखते ही भामण्डल भूताविष्ट की तरह कामातुर हो उठा। विंध्य पर्वत से पकड़कर लाए हुए हाथी की तरह उसके नेत्र की नींद जाती रही। वह आहार पानी का परित्याग कर ध्यान निरत योगी की तरह रहने लगा। भामण्डल की यह अवस्था देखकर राजा चन्द्रगति ने उससे पूछा, 'किसी चिन्ता ने तुम्हें आविष्ट कर लिया है या अस्वस्थता-पीड़ित हो या किसी ने तुम्हारी आज्ञा भंग की है या अन्य किसी प्रकार का तुम्हें दुःख है? तुम अपने दुःख का कारण मुझे बताओ।' पिता का कथन सुनकर भामण्डल अन्तरंग और बहिरंग लज्जा से नतमस्तक हो गया कारण कुलीन व्यक्ति अपने गुरुजनों के सम्मुख यह बात कैसे कह सकते हैं?

किन्तु भामण्डल के मित्रों ने उसके दुःख का कारण पिता को बताया। बोले, 'नारद अंकित एक स्त्री का चित्र देखकर भामण्डल की यह अवस्था हो गयी है।' यह सुनकर चन्द्रगति ने शीघ्र ही ससम्मान नारद को अपने आवास पर बुलवाया और एकान्त में उनसे पूछा कि उन्होंने जिस स्त्री का चित्र अंकित किया है वह किसकी कन्या है?

नारद ने उत्तर दिया, 'जिस स्त्री का चित्र अंकित कर मैंने उसे दिखाया था वह राजा जनक की पुत्री सीता है। सीता का रूप जैसा है वैसा तो मैं अंकित ही नहीं कर सका। वैसा अंकित करना तो अन्य के लिए भी सम्भव नहीं है। कारण वह रूप लोकोत्तर है। सीता के जैसा रूप तो मानवियों में क्या देवियों में भी नहीं देखा जाता। यहाँ तक कि नाग कन्याएँ और गन्धर्व कन्याओं में भी नहीं। उसके रूप की सृष्टि करने में तो देव भी असमर्थ है। उसका रूप तो दूर उस रूप की अनुकृति करने में भी देव या मनुष्य भी असमर्थ है। यहाँ तक की स्वयं प्रजापति ब्रह्मा भी अनुरूप आकृति सृजन करने में असमर्थ हैं। उसकी आकृति और वाणी में जो माधुर्य है, हाथ पाँव कण्ठ में जो लालिमा है, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। उसके रूप को जिस प्रकार चित्रित करने में मैं असमर्थ हूँ, उसी प्रकार उस रूप का वर्णन करने में भी असमर्थ हूँ। फिर भी कहता हूँ वह यथार्थतः भामण्डल के ही योग्य है। यह समझकर ही मैंने भामण्डल को उसका चित्र यथासाध्य अंकित करके दिखाया था।'

नारद की बात सुनकर चन्द्रगति भामण्डल से बोले, 'वह तुम्हारी पत्नी होगी।' इस प्रकार भामण्डल को आश्वस्त कर उन्होंने नारद को विदा दी।

तदुपरान्त चन्द्रगति ने चपलमति नामक एक विद्याधर को कहा, 'तुम शीघ्र जाकर जनक को अपहरण कर ले आओ।' चन्द्रगति के आदेशानुसार वह रात्रि के समय मिथिला गया और राजा जनक को उठाकर ले आया और उनके सम्मुख उपस्थित किया। रथनुपुर के अधिपति चन्द्रगति ने तब सस्नेह जनक का आलिंगन कर अपने पास बैठाकर कहा, 'तुम्हारी जो लोकोत्तर रूप सम्पन्ना सीता नामक कन्या है और मेरे रूप सम्पत्ति से परिपूर्ण भामण्डल नामक जो पुत्र है—मेरी इच्छा है दोनों वैवाहिक बंधन में बंध जाएं ताकि योग्य के साथ योग्य का मिलन हो जाए और इस समय से हम दोनों भी मित्र हो जाएँ।'

यह सुनकर जनक बोले, 'मैंने अपनी कन्या को दशरथ पुत्र राम को दे दी है। अब अन्य को किस प्रकार दूँ? कारण कन्या तो एक बार ही दी जाती है।'

चन्द्रगति बोला, 'जनक, यद्यपि मैं सीता को हरण कर लाने में समर्थ हूँ फिर भी हम दोनों में प्रेम बढ़े यही सोचकर तुम्हें यहाँ लाकर सीता की याचना कर रहा हूँ। यद्यपि तुमने अपनी कन्या राम को देने की जबान

दी है, फिर भी राम हमको पराजित किए बिना उससे विवाह नहीं कर सकता। युद्ध न हो इसका एक उपाय है। मेरे यहाँ दुस्सह तेजोमय बज्रावर्त और अर्णवावर्त नामक दो धनुष है। एक हजार देवता उसकी रक्षा करते हैं। देवों के आदेश से हमारे घर पर उनकी कुलदेवों की तरह पूजा होती है। उन दोनों धनुषों को भावी बलदेव और वासुदेव व्यवहार करेंगे। तुम धनुष ले जाओ। यदि राम उनमें से एक पर भी प्रत्यंचा चढ़ा पावे तो समझ लेना मैं राम से पराजित हो गया हूं। इसके बाद वह सीता के साथ सुखपूर्वक विवाह कर सकेगा।'

जनक द्वारा ऐसी प्रतिज्ञा करवाकर उसने उन्हें मिथिला पहुँचा दिया। स्वयं भी स्वपरिवार मिथिला गया। साथ में दोनों धनुष भी ले गया। वह धनुष को सभागृह में रखकर स्वयं नगर के बाहर अवस्थित हो गया।

जनक ने सारी बात स्वपत्नी विदेहा से कही। सुनकर शर से आहत होने की तरह विदेहा अत्यन्त दुःखी हो गयी। वह रोते-रोते कहने लगी—'हे दैव, तुम अत्यन्त निर्दय हो। तुमने मेरे एकमात्र पुत्र को हरण कर लिया फिर भी तृप्त नहीं हुए। अब तुम मेरी कन्या को भी हरण करना चाहते हो। संसार में कन्याएँ स्वेच्छा से वर वरण करती हैं, किन्तु दैव योग से मेरी कन्या को अन्य की इच्छा से वर ग्रहण करना होगा। अन्य की इच्छा से की गई प्रतिज्ञा के अनुसार यदि राम इस धनुष पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सके और दूसरा यह काम करे तब तो अवश्य ही मेरी कन्या को अवांछित वर प्राप्त करना होगा। हाय दैव, अब मैं क्या करूँ?'

विदेहा का रुदन सुनकर जनक उसे आश्वस्त करते हुए बोले, 'देवी, तुम डरो मत। मैंने राम का शौर्य देखा है। यह धनुष उसके लिए लता तुल्य है।'

विदेहा को इस प्रकार समझा-बुझाकर दूसरे ही दिन सुबह जनक ने मण्डप स्थित मंच पर दोनों धनुष-रत्नों की पूजा कर रख दिए। राजा जनक ने सीता के स्वयम्वर में विद्याधर और मनुष्य राजाओं को आमंत्रित किया। वे आए और एक-एक कर मण्डप स्थित सिंहासन पर बैठने लगे।

तदुपरान्त अलंकार धारण कर सखियों से घिरी हुई सीता मण्डप में आई। उसे देखकर लगा मानो कोई देवी धरती पर पैदल चल रही है। लोगों की दृष्टि के लिए अमृत तुल्य सीता ने सविता की तरह राम का ध्यान कर धनुष की पूजा की और वहीं खड़ी हो गयी।

नारद के कथनानुसार सीता का रूप देखकर भामंडल कामातुर हो उठा।

उसी समय जनक का द्वारपाल हाथ ऊँचा करके बोलने लगा, 'हे विद्या-धर और पृथ्वी के राजागण, सुनिए—राजा जनक ने घोषणा की है कि इन दोनों धनुषों में से किसी एक में जो प्रत्यंचा चढ़ा सकेगा उसे मेरी कन्या प्राप्त होगी।'

यह सुनकर एक-एक कर विद्याधर राज और पृथ्वी के राजागण धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए धनुष के निकट जाने लगे। किन्तु प्रत्यंचा चढ़ाना तो दूर वे लोग भयंकर सर्पों से वेष्टित, जिससे तीव्र ज्वालाएँ निकल रही थी ऐसे धनुषों का स्पर्श भी नहीं कर पाए। बहुत से धनुष से निकलने वाले अग्नि स्फुलिंग से दग्ध होकर लज्जा से मस्तक नीचा किए अपने-अपने आसन पर जा बैठे। तब सुवर्णमय कुण्डल को आन्दोलित करते हुए दशरथ पुत्र राम गजेन्द्र गति से धनुष के पास जाकर उपस्थित हुए। उस समय चन्द्रगति आदि राजा उपहास की दृष्टि से और राजा जनक सशंक दृष्टि से राम की ओर देखने लगे। सौमित्री के अग्रज राम तब निःशंक होकर इन्द्र जैसे वज्र का स्पर्श करता है उसी प्रकार वज्रावर्त धनुष को हाथों से स्पर्श किया। तुरन्त ही उससे निकलते सर्प एवं अग्नि ज्वालाएँ शान्त हो गयी। तब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ राम ने उस धनुष को लौहपीठ पर रखकर बेत की तरह झुकाया, उस पर प्रत्यंचा चढ़ायी और कानों तक खींचकर टंकार की। उस टंकार ने धरती और आकाश को गुंजित करते हुए पटह की तरह राम की कीर्ति प्रसिद्ध कर दी। सीता तत्क्षण अग्रसर हुयी और राम के गले में वरमाला अर्पण कर दी। तब राम ने धनुष को प्रत्यंचा से मुक्त कर दिया।

तदुपरान्त लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से अर्णवावर्त धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायी जिसे लोग विस्मित होकर देखने लगे। तब लक्ष्मण ने प्रत्यंचा खींचकर छोड़ दी। उससे जो ध्वनि निकली उससे मानो दिक् समूह के कान वधिर हो गए। फिर लक्ष्मण ने प्रत्यंचा उतार दी।

उसी समय विस्मित और चकित १८ विद्याधरों ने देव कन्याओं-सी अद्‌भुत सुन्दर कन्याएँ लक्ष्मण को दीं। चन्द्रगति आदि विद्याधर राजा लज्जित होकर दुःखार्त भामंडल को लेकर स्व-स्व राज्य को लौट गए।

राजा जनक ने दशरथ को संवाद भेजा। दशरथ के आने पर राजा जनक ने खूब धूमधाम से राम के साथ सीता का विवाह कर दिया। जनक के भाई कनक ने रानी सुप्रभा के गर्भ से उत्पन्न अपनी कन्या भद्रा का विवाह भरत के साथ कर दिया। तत्पश्चात् राजा दशरथ पुत्र और पुत्रवधुओं सहित प्रजाजन द्वारा कृत उत्सव से मुखरित अयोध्या नगरी लौट आए।

एक बार दशरथ ने खूब धूमधाम से चैत्य महोत्सव और शान्ति स्नात्र करवाया। राजा ने स्नात्र जल अपनी पटरानी अपराजिता (कौशल्या) को अन्तःपुर के एक वृद्ध पुरुष के द्वारा भेजा। तदुपरान्त अन्य दासियों द्वारा अन्य रानियों को भी वही स्नात्र जल भेजा। तरुण अवस्था के कारण दासियाँ द्रुतगति से वह जल रानियों के पास ले गईं और उन्होंने भी वन्दना कर उस जल को मस्तक से लगाया।

अन्तःपुर का अधिकारी वृद्ध होने के कारण शनिग्रह की भाँति धीरे-धीरे जा रहा था। अतः पट्ट महारानी को वह जल शीघ्र नहीं मिला। इससे दुःखी होकर वह सोचने लगी, राजा ने सब रानियों को स्नात्र जल भेजकर उनपर कृपा की है किन्तु मुझे पट्ट महारानी होते हुए भी वह जल नहीं भेजा। अतः मुझसी भाग्यहीना का जीवित रहने से क्या लाभ है? मान नष्ट हो जाने पर जीवित रहना मृत्यु से भी अधिक कष्टकर है।

ऐसा विचार कर मृत्यु का संकल्प ले मानिनी वे भीतरी कक्ष में गईं और वस्त्र द्वारा फाँसी लगाने का उपक्रम करने लगी। ठीक उसी समय राजा दशरथ वहाँ पहुँचे। मरणोन्मुख कौशल्या को उस अवस्था में देखकर भयभीत राजा ने शीघ्र ही फाँसी का फन्दा खोलकर उन्हें अपनी गोद में बैठाया और पूछा, 'प्रिये, क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है जिसके कारण तुम ऐसा दुःस्साहस कर रही थी? अथवा दैवयोग से मेरे द्वारा तो तुम्हारा कोई अपमान नहीं हुआ?' तब कौशल्या गद्‌गद् कण्ठ से बोली, 'देव, आपने सभी रानियों को स्नात्र-जल भेजा किन्तु मुझे नहीं भेजा—क्यों?'

कौशल्या के अपना वाक्य पूर्ण करने के पूर्व ही वृद्ध अधिकारी 'यह स्नात्र जल है, इसे महाराज ने भेजा है' कहते-कहते वहाँ उपस्थित हुआ।

राजा ने तुरन्त उस पवित्र जल से रानी का मस्तक अभिसिंचित किया। फिर वृद्ध पुरुष से पूछा, 'भद्र, तुमने आने में इतनी देर क्यों कर दी?' वृद्ध पुरुष ने उत्तर दिया, 'स्वामिन्, सर्व कार्यों में असमर्थ इसका दायित्व मेरी वृद्ध अवस्था पर ही है आप मेरी ओर देखें।'

राजा ने उसकी ओर देखा। देखा मरणोन्मुख व्यक्ति की तरह उसका पैर हिल रहा था। मुँह से लाल गिर रही थी। दाँत टूट चुके थे। ललाट पर थी वलिरेखा। भौहों के केशों से नेत्र आच्छादित थे। देह का मांस और खून सूख गया था। वह थर-थर काँप रहा था।

वृद्ध पुरुष की यह अवस्था देखकर राजा सोचने लगे—मुझे इस अवस्था

प्राप्त होने के पूर्व ही मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। इस विचार ने उनके हृदय को वैराग्य से भर दिया। फिर भी कुछ दिनों तक विषयों से विरक्त होते हुए भी वे संसार में रहे।

एक बार चार ज्ञान के अधिकारी सत्यभूति नामक महामुनि संघ सहित अयोध्या आए। राजा दशरथ पुत्रों और परिवार सहित उन्हें वन्दना करने गए और देशना सुनने के लिए उनके निकट बैठ गए।

राजा चन्द्रगति अनेक विद्याधर राजाओं और सीता की अभिलाषा से पीड़ित पुत्र भामण्डल सहित रथावर्त पर्वत पर स्थित अर्हतों की वन्दना करने गए हुए थे। वहाँ से लौटते समय वे उधर से गुजर रहे थे। आकाश पथ से सत्यभूति मुनि को देखकर नीचे उतरे। मुनि को वन्दना कर वे भी उनकी देशना सुनने के लिए उनके सम्मुख जा बैठे।

भामण्डल को सीता की अभिलाषा से सन्तप्त देखकर सत्यशील सत्यभूति मुनि ने समयोपयोगी देशना दी। प्रसंगतः पाप से बचाने के लिए उन्होंने चन्द्रगति और पुष्पवती एवं भामण्डल और सीता का पूर्व भव सुनाया और साथ ही सीता और भामण्डल का एक साथ जन्म ग्रहण, भामण्डल का अपहरण आदि वृत्तान्त भी सुनाए।

यह सुनकर भामण्डल को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। वह तत्क्षण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। कुछदेर बाद जब चेतना लौटी तो भामण्डल ने अपना पूर्व भव जैसा मुनि ने बतलाया था वैसा ही स्वयं विवृत किया। इससे चन्द्रगति आदि के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। सद्बुद्धि प्राप्त होने के कारण भामण्डल ने सीता को अपनी बहिन समझकर प्रणाम किया। सीता ने भी भामण्डल को अपना सगा भाई जिसका जन्म के समय ही अपहरण हो गया था, जानकर आशीर्वाद दिया। विनयी भामण्डल ने जिसके हृदय में उसी समय सौहार्द उत्पन्न हुआ था जमीन से मस्तक लगाकर राम को प्रणाम किया।

चन्द्रगति ने उत्तम विद्याधरों को मिथिला भेजकर जनक और विदेहा को वहाँ बुलवाया और भामण्डल का जन्म के समय ही जिसका अपहरण हो गया था 'आपका पुत्र है' कहकर उसके हरण का सारा वृत्तान्त सुनाया। चन्द्रगति का विवरण सुनकर जनक और विदेहा उसी प्रकार हर्षित हो गये जिस प्रकार मेघ की गर्जना सुनकर मयूर हर्षित हो जाता है। विदेहा के स्तनों से दुग्ध की धार प्रवाहित होने लगी। अपने वास्तविक माता-पिता को पाकर भामण्डल

ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने भी उसका मस्तक चूमकर हर्ष के आँसुओं से उसे अभिषिक्त कर दिया।

चन्द्रगति विरक्त हो गये अतः भामण्डल को राज्य देकर सत्यभूति मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। तब भामण्डल सत्यभूति और चन्द्रगति मुनियोंको, जनक, विदेहा (अपने माता-पिता) और राजा दशरथ को प्रणाम कर अपने राज्य को लौट गया। तब राजा दशरथ ने भी सत्यभूति मुनि को प्रणाम कर अपना पूर्वभव जानना चाहा। मुनि ने कहना प्रारम्भ किया—

'तुम सेनपुर में भावन नामक महामना वणिक थे। तुम्हारे दीपिका नामक पत्नी से उपास्ति नामक एक कन्या थी। उसने उस जन्म में साधुओं के साथ द्वेषपूर्ण व्यवहार किया जिसके फलस्वरूप तीर्यंचादि महाकष्टदायी योनियो में दीर्घकाल भ्रमण करती रही।

'अनुक्रम से तुमने चन्द्रपुर के धन्य नामक वणिक की सुन्दरी नामक पत्नी के गर्भ से वरुण नामक पुत्र रूप में जन्म लिया। उस भव में प्रकृति से उदार होने के कारण तुमने साधुओं को श्रद्धापूर्वक खूब दान दिया। मृत्यु के पश्चात् वहाँ से तुम धातकी खण्ड के उत्तर कुरु में युगलिक रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ से देवलोक में जन्मे। देवलोक से च्युत होकर तुम ने पुष्कलावती विजय में पुष्कला नगरी के राजा नन्दीघोष और रानी पृथ्वी देवी के पुत्र नन्दीवर्द्धन के रूप में जन्म ग्रहण किया। राजा नन्दीघोष तुम्हें राज्य देकर यशोधर मुनि से दीक्षित हो गये। मृत्यु के पश्चात् वे ग्रैवेयक विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए। और तुम श्रावक धर्म पालन कर मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए।

'वहाँ से च्युत होकर तुम पूर्व विदेह के पर्वत की उत्तरी श्रेणी के अलंकार रूप शशिपुर नामक नगर में विद्याधरपति रत्नमाली की विद्युल्लता नामक पत्नी के गर्भ से दीर्घबाहु सूर्यञ्जय के रूप में उत्पन्न हुए।

'एक बार रत्नमाली गर्वित विद्याधर बज्रनयन का दमन करने के लिए सिंहपुर गये। वहाँ वे बाल, वृद्ध, स्त्री, पशु और उपवन सहित समस्त नगर को जलाने लगे। उसी समय उपमन्यु नामक पुरोहित का जीव जोकि उसी समय सहस्रार देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ था वहाँ आया और बोला, 'हे महानुभाव ऐसा उग्र पाप मत करिए। आप पूर्व भव में हरिनन्दन नामक राजा थे। उसी समय विवेकपूर्वक आपने प्रतिज्ञा की थी कि आप मांस ग्रहण नहीं करेंगे। तदुपरान्त आपने मेरे (पुरोहित उपमन्यु) कहने से प्रतिज्ञा भंग

कर दी। उपमन्यु की स्कन्द नामक एक व्यक्ति ने हत्या कर दी। मृत्यु के पश्चात् वह हाथी बना। उसी हाथी को राजा भूरिनन्दन पकड़कर ले आए। युद्ध में उस हाथी की मृत्यु हुई। मृत्यु के पश्चात् वह राजा भूरिनन्दन और उनकी पत्नी गांधारी के अरिसूदन नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ अतः उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। मृत्यु के पश्चात् वह सहस्रार देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ, वही मैं हूँ।'

'राजा भूरिनन्दन ने मृत्यु के पश्चात् अजगर के रूप में एक वन में जन्म-ग्रहण किया। वहाँ दावानल में दग्ध होकर वे नरक गये। पूर्व स्नेह के कारण मैंने नरक में जाकर उन्हें उपदेश दिया। वहाँ से निकलकर आप प्रतिचारी नामक राजा हुए। पूर्व भव में आपने मांस त्याग की प्रतिज्ञा भंग की थी उसका इतना दुःखदायक परिणाम हुआ। अतः अब फिर वैसा ही अनन्त दुःखात्मक परिणामयुक्त नगरदाह का कार्य न करें।'

'इस प्रकार अपना पूर्वभव अवगत कर रत्नमाली ने युद्ध से विरक्त होकर तुम्हारे (सूर्यंजय का) पुत्र कुलनन्दन को राज्य देकर अपने पुत्र सूर्यंजय (तुम) सहित तिलकसुन्दर आचार्य से दीक्षा ग्रहण कर ली। दोनों ही मुनिधर्म पालन कर मृत्यु के पश्चात् महाशुक्र देवलोक में उत्तम देवरूप में उत्पन्न हुए।

'वहाँ से च्युत होकर सूर्यंजय का जीव तुम राजा दशरथ बने और रत्नमाली का जीव राजा जनक बना। पुरोहित उपमन्यु सहस्रार देवलोक से च्युत होकर जनक का छोटा भाई कनक बना और नन्दीवर्द्धन के भव में जो जीव नन्दीघोष नामक तुम्हारा पिता था वह ग्रैवेयक विमान से च्युत होकर मैं सत्यभूति बना हूँ।'

इस प्रकार अपना पूर्व भव अवगत करने से राजा दशरथ के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः वे मुनि को वन्दना कर राज्यभार राम को देने के लिए प्रासाद में गए और अपनी पत्नियों, पुत्रों, मन्त्रियों को बुलाकर मधुर वाणी में सबसे दीक्षा लेने की अनुमति चाही।

भरत उसी समय पिता को नमस्कार कर बोले, 'पिताजी, मैं आपके साथ सर्वविरति रूप धर्म ग्रहण करूँगा। आपके बिना मैं घर पर नहीं रहूँगा। यदि रहूँगा तो दो प्रकार से वह मेरे लिए कष्टकर होगा। एक आपका विरह, दूसरा सांसारिक संक्लेश।'

यह सुनकर कैकेयी डर गयी। वह सोचने लगी, यदि ऐसा ही हुआ तो मेरे पति भी नहीं रहेंगे, पुत्र भी नहीं रहेगा। अतः वह बोली, 'स्वामिन्,

आपको अवश्य ही याद होगा, स्वयम्वर के समय मैंने आपका सारथ्य किया था। उसी समय आपने मुझे एक वर देने को कहा था। अब वह वर दीजिए। क्योंकि आप सत्यप्रतिज्ञ हैं। महात्माओं की प्रतिज्ञा पत्थर पर खोदी रेखा की तरह होती है।'

दशरथ बोले, 'मैंने जो वर देने को कहा था वह मुझे याद है। एतदर्थ मेरी दीक्षा निषेध के सिवाय जो कुछ मेरा है माँग लो।'

तब कैकेयी बोली, 'हे नाथ, यदि आप स्वयं दीक्षित हो रहे हैं तो पूरा राज्य भरत को दे दीजिए।' दशरथ ने उत्तर दिया, 'यह राज्य तुम अभी ले लो।' तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण को बुलाकर कहा, 'वत्स, एक बार कैकेयी ने मेरा सारथ्य किया था। उस समय मैंने उसे वर माँगने को कहा था। उसी वर में उसने आज भरत के लिए राज्य माँगा है।'

यह सुनकर राम आनन्दित होकर बोले, 'तात, मेरी माँने उस वर में मेरे पराक्रमी भाई भरत के लिए राज्य माँगा है यह तो उचित ही हुआ है। आप जो इस विषय में मेरा परामर्श चाह रहे हैं यह तो आपकी उदारता है। किन्तु मुझे इससे यह सोचकर दुःख हो रहा है कि लोग इससे मुझे अविनयी समझ सकते हैं। हे तात, आप सन्तुष्ट होकर यह राज्य जिसे खुशी दे सकते हैं। मैं तो आपकी आज्ञा को धारण करने वाला भृत्य मात्र हूँ। मेरा निषेध करने का या सम्मति देने का कोई अधिकार ही नहीं है। जो भरत है वही मैं हूँ। हम दोनों आपके लिए समान हैं, अतः आप सहर्ष भरत को राजपद पर अभिषिक्त करें।'

राम की बात सुनकर दशरथ विस्मित और विशेष प्रीतिमय हो गए और तदनुरूप करने के लिए मंत्रियों को आज्ञा दी। किन्तु भरत बीच में ही बोल उठे, 'तात, आपके साथ दीक्षित होने की बात मैंने पहले ही आपको कह दी थी। अतः अन्य के कहने से अन्यथा करना किसी भी प्रकार उचित नहीं है।'

दशरथ बोले, 'वत्स, तुम मेरी प्रतिज्ञा को व्यर्थ मत करो। तुम्हारी माँ को तो मैंने बहुत पहले ही वरदान दे दिया था। जो कि दीर्घकाल से धरोहर की भाँति मेरे पास रक्षित था। उस वर में वह आज तुम्हारे लिए राज्य चाह रही है। इसलिए पुत्र तुम्हारी माँ और मेरी आज्ञा को अन्यथा करना तुम्हें उचित नहीं है।'

तब राम भरत से बोले, 'भाई, यद्यपि तुम्हारे मन में राज्य प्राप्ति की

बिन्दु मात्र भी इच्छा नहीं है फिर भी पिताजी के कथन को सत्य करने के लिए तुम यह राज्य ग्रहण करो।'

राम की यह बात सुनकर भरत के नेत्रों में जल भर आया। वे राम के चरणों में गिर पड़े और करबद्ध होकर गद्गद् कण्ठ से बोले, 'हे पूज्य, पिताजी और आप जैसे महामना के लिए मुझे राज्य देना उचित है। किन्तु मुझ-से व्यक्ति को तो वह ग्रहण करना उचित नहीं है। क्या मैं राजा दशरथ का पुत्र नहीं हूँ ? या आप जैसे अग्रज का अनुज जिस पर मैं गर्व कर सकूँ।'

यह सुनकर राम दशरथ से बोले, 'पिताजी, मेरे यहाँ रहते भरत राज्य ग्रहण नहीं करेगा। एतदर्थं मैं वन में वास करने जा रहा हूँ।' ऐसा कहकर पिता की आज्ञा ली और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर हाथ में धनुष और कंधे पर तूणीर लिए वे वहाँ से निकल गए।

भरत उच्च स्वर से रोने लगे। राम को वन जाते देखकर अत्यन्त स्नेहवश दशरथ भी बार-बार मूर्च्छित होने लगे।

राम वहाँ से निकल कर माँ कौशल्या के पास जाकर बोले, 'माँ, मैं जैसा तुम्हारा पुत्र हूँ, भरत भी वैसा ही तुम्हारा पुत्र है। अपनी प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए पिताजी ने उसे राज्य दिया है। किन्तु मैं यदि यहाँ रहूँगा तो वह राज्य ग्रहण नहीं करेगा। इसलिए मेरा वन जाना ही उचित है। आप मेरे वियोग में कातर मत होइएगा।'

राम की बात सुनकर कौशल्या मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी। दासियों ने चन्दन जल के छींटे देकर उन्हें स्वस्थ किया। तब वे बोली, 'किसने मुझे स्वस्थ किया ? किसने मुझे बचाया ? मेरी सुखपूर्वक मृत्यु के लिए तो मूर्च्छा ही ठीक थी। क्योंकि जीवित रहकर मैं राम का विरह कैसे सह सकूँगी ? अरे कौशल्या, तेरे पति दीक्षित हो रहे हैं, तेरा पुत्र वन जा रहा है, यह सुनकर भी तेरी छाती नहीं फट रही है ? लगता है वह वज्र की बनी हुयी है।'

तब राम माँ को सान्त्वना देकर बोले, 'माँ मेरे पिताजी की पत्नी होकर आप साधारण स्त्री की तरह यह क्या कह रही हैं ? सिंहनी-शावक वन में अकेला ही विचरण करता है फिर भी सिंहनी स्वस्थ रहती है, कभी भी विचलित नहीं होती। माँ, पिताजी द्वारा दिया गया वरदान पितृऋण की भाँति होता है। उस ऋण से उन्हें मुक्त करना क्या मेरा कर्तव्य नहीं है ? यदि मैं यहाँ रहूँ, भरत राज्य न ले तब पिताजी किस प्रकार ऋणमुक्त होंगे ?'

इस प्रकार युक्तियुक्त वाक्यों से कौशल्या को समझाकर और अन्य माताओं को प्रणाम कर राम पुरी से निकल गए।

सीता ने तब दूर से राजा दशरथ को प्रणाम कर कौशल्या के पास गयी और राम के साथ वन जाने की अनुमति माँगी।

तब कौशल्या पुत्री की तरह उसे अपने गोद में बैठाकर और उष्ण अश्रुजल से उसे सिंचित करती हुयी बोली, 'वत्से, विनीत राम पिता की आज्ञा से वन जा रहा है। उस नरसिंह पुरुष के लिए वह सब कुछ कठिन नहीं है। किन्तु तुम तो जन्म से ही देवी की तरह उत्तम वाहनादि से यात्रा करती थी तब क्या पैदल चलने का कष्ट सहन कर सकोगी ? कमल के अन्तर्भाग की तरह तुम्हारी देह कोमल है। जब तुम धूप आदि से पीड़ित होगी तब तुम्हारे पति को भी कष्ट होगा। फिर भी मैं तुम्हें पति के साथ जाने और अकारण कष्ट सहने के लिए जैसे निषेध नहीं कर पा रही हूँ कारण तुम पति का अनु-गमन कर रही हो, उसी प्रकार सम्मति भी नहीं दे पा रही हूँ।'

कौशल्या का कथन सुनकर प्रातःकालीन विकसित कमल की तरह प्रफुल्ल शोक-रहित सीता ने कौशल्या को प्रणाम कर कहा, 'माँ, बादल के पीछे जिस प्रकार बिजली सर्वदा रहती है उसी प्रकार मैं राम के साथ जा रही हूँ। राह में यदि कोई तकलीफ हुयी तो आपके प्रति मेरी जो भक्ति है वह उसे दूर कर देगी।' ऐसा कहकर कौशल्या को पुनः प्रणाम कर आत्मा में जिस प्रकार आत्माराम का ध्यान किया जाता है उसी प्रकार राम का ध्यान करती हुई वह भी पुरी से निकल गयी।

सीता को राम के साथ वन जाते देख नगरवासियों का हृदय शोक से भर गया। अत्यन्त गद्‌गद् कण्ठ से वे बोलने लगे—'ऐसी प्रगाढ़ पतिभक्ति के लिए सीता आज से जो रमणियाँ पति को देव-तुल्य मानती हैं उनके लिए दृष्टान्त रूप हो गयी हैं। इस उत्तम सती को कष्ट का जरा भी भय नहीं है। इसने अपने शील से उभय कुल को पवित्र किया है।'

राम के वनगमन की बात सुनकर लक्ष्मण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। वे मन ही मन सोचने लगे मेरे पिता दशरथ स्वभाव के अत्यन्त सरल हैं। किन्तु स्त्रियाँ स्वभाव से ही सरल नहीं होती। नहीं तो कैकेयी ने इतने दिनों तक वर न माँगकर आज ही वर क्यों माँगा ? पिताजी ने भरत को राज्य दिया और अपने ऋण का बोझ उतार कर पितरों को ऋण भय से मुक्त कर दिया। किन्तु मैं क्यों नहीं अब निर्भीक होकर अपना क्रोध शान्त करने

के लिए कुलाधम भरत से राज्य छीनकर राम को लौटा हूँ ? किन्तु नहीं। राम सत्यवादियों में श्रेष्ठ है। अतः कुलक्रम परित्यक्त राज्य को वे किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करेंगे और मेरे इस कार्य से पिताजी को भी कष्ट होगा। पिताजी को दुःख देना मुझे अभिप्रेत नहीं है। अतः भरत ही राज्य करें, मैं एक अनुचर की भाँति राम के साथ वन जाता हूँ।

ऐसा विचार कर सौमित्री पिता की आज्ञा लेकर अपनी माता सुमित्रा के पास गए। माँ को प्रणाम कर बोले, 'माँ राम वन जा रहे हैं इसलिए मैं भी उनका अनुगमन करूँगा कारण जिस प्रकार समुद्र मर्यादा बिना नहीं रहता उसी प्रकार सौमित्री भी राम बिना नहीं रह सकता।'

लक्ष्मण की बात सुनकर हृदय में धैर्य धारण कर सुमित्रा बोली, 'वत्स, राम तो बहुत पहले ही मुझे प्रणाम कर गया है अतः विलम्ब मत करो, शीघ्र जाओ, नहीं तो तुम उससे बहुत दूर रह जाओगे।'

माँ की बात सुनकर लक्ष्मण माँ को प्रणाम कर बोले, 'माँ तुम धन्य हो। तुम्हीं मेरी वास्तविक माँ हो।'

फिर लक्ष्मण कौशल्या को प्रणाम करने गए। कौशल्या को प्रणाम कर बोले, 'माँ, मेरे अग्रज अकेले वन गए हैं इसलिए मैं भी उनके साथ जाने को उत्सुक हुआ हूँ, आप मुझे आज्ञा दीजिए।'

ऐसा सुनकर अश्रु प्रवाहित करती हुयी कौशल्या बोली, 'वत्स, मैं भाग्यहीन हूँ, मेरी मृत्यु निश्चित है, कारण तुम भी अब मेरा परित्याग कर वन चले जा रहे हो। लक्ष्मण, राम के विरह से पीड़ित मेरे हृदय को आश्वस्त करने के लिए तुम यहीं रहो।'

लक्ष्मण बोले, 'माँ, राम की माता होकर भी आप इतनी अधीर क्यों हो रही हैं ? मेरे अग्रज बहुत पहले चले गये हैं अतः मैं जल्द ही उनके पीछे जाऊँगा। एतदर्थ आप मुझे रोकने की चेष्टा न करें। मैं तो सर्वदा ही राम के अधीन हूँ।' ऐसा कहकर उन्हें प्रणाम कर हाथ में धनुष और पीठ पर तुणीर बाँधकर लक्ष्मण शीघ्र राम और सीता के पास जाकर उपस्थित हो गये। तदुपरान्त तीनों ही मानो वन में विहार करने जा रहे हैं इस प्रकार प्रफुल्लमना नगर से निर्गत हो गए।

अपने प्राणों के समान राम, लक्ष्मण और सीता को नगरवासियों ने जब नगर से बाहर जाते देखा तो वे भी अत्यन्त व्याकुल होकर उनके पीछे दौड़ने लगे और क्रूर कैकेयी को भला बुरा कहने लगे। राजा दशरथ और अन्तःपुर

का परिवार स्नेह-रज्जु से बंधे हुए रोते-रोते राम के पीछे चलने लगे। जब राजा और प्रजाजन राम के पीछे नगर से बाहर निकल गये तो लगा मानों समस्त अयोध्या सूनी हो गयी है।

राम ने माता-पिता को समझा बुझाकर किसी प्रकार नगर को वापिस भेजा। प्रेम भरे समुचित कथनों द्वारा पुरवासियों को भी लौटाया, फिर सोत्साहपूर्वक लक्ष्मण और सीता सहित अग्रसर हुए।

राह में प्रत्येक नगर के प्रत्येक ग्राम के अधिवासी वृद्ध पुरुषों ने राम को अपने यहाँ रहने का अनुरोध किया। किन्तु उन सभी की प्रार्थना अस्वीकार कर राम आगे बढ़ने लगे।

उधर भरत ने राज्य लेना अस्वीकृत कर दिया। वास्तव में सहोदर विरह को सहन करने में असमर्थ बने वे माँ केकैयी और अपने ऊपर दोषारोपण करने लगे।

दीक्षा ग्रहण को उत्सुक राजा दशरथ ने राम को राज्य ग्रहण करने के लिए लक्ष्मण सहित लौटा लाने के लिए सामन्त और मन्त्रियों को भेजा।

राम पश्चिम की ओर जा रहे थे। सामन्तगण अति शीघ्रता से उनके निकट पहुँचे और उन्हें अयोध्या लौटने के लिए राजा दशरथ का आदेश सुनाया। सामन्तों एवं मन्त्रियों के विनीत अनुनय-विनय के पश्चात् भी राम लौटे नहीं। कारण महान पुरुषों की प्रतिज्ञा पर्वत-सी अटल होती है। राम उन्हें बार-बार लौट जाने को कह रहे थे किन्तु राम को लौटा ले जाने की आशा में वे उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

राम, लक्ष्मण और सीता अग्रसर होते हुए विन्ध्याटवी में वन्य पशुओं के निवास रूप एवं निर्जन और वृक्ष सन्नद्ध प्रदेश में पहुँच गये। वहाँ जाते हुए राह में गंभीर आवर्त्तयुक्त विपुल प्रवाह वाली गम्भीरा नामक नदी आयी। उसके तट पर खड़े होकर राम ने सामन्तों से कहा, 'आपलोग यहीं से लौट जाएँ। कारण सामने का पथ महान कष्टदायक है। आप पिताजी को मेरा कुशल समाचार दीजिएगा और भरत को पिताजी और मेरे समान समझकर सेवा करिएगा।'

'हम राम के चरणों की सेवा के योग्य नहीं है, हम लोगों को धिक्कार है'— ऐसा कहते हुए अश्रुजल से वस्त्रों को भिगोते हुये सामन्तगण बड़े कष्ट से लौटे।

[क्रमशः

संकलन

॥ मैत्री का मंगल सूर्योदय ॥

आत्मा का मूल स्वभाव मैत्री है। वह किसी के प्रति सद्-असद् लगाव नहीं रखती है। अतः जो महापुरुष आत्मा में स्थित हो जाते है वे राग-द्वेष विजेता बनकर प्रणम्य बन जाते हैं। सामान्य व्यक्ति इस ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाते लेकिन हम सभी चाहते यही हैं कि हमारा किसी से वैर विरोध न हो। जीवन में शान्ति, मन में आनन्द और मस्तिष्क में समतुलता बनी रहे।

वस्तुतः मैत्री क्षमा की पुत्री है। क्षमा की कोख में मैत्री का जन्म होता है। पहले क्षमा का भाव पैदा होना जरूरी है फिर मैत्री का जन्म होता है। क्षमा के दो अंग हैं—क्षमा मांगना और क्षमा करना। व्यवहार जगत् में क्षमा मांगना कठिन है क्योंकि इसके लिए अपनी भूल का अहसास कर विनय भाव से झुकना होता है। अपने असद् व्यवहार के लिए सरल मन से सामने के व्यक्ति के प्रति विनय भाव से भूल स्वीकारते हुए क्षमा माँगना ही सच्ची क्षमा है। लेकिन क्षमा माँगने से भी अधिक कठिन है क्षमा प्रदान करना। व्यक्ति अपने प्रति किये गये दुर्व्यवहार को भूलता नहीं। वह द्वेष की गाँठ बांधकर बदला लेने का संकल्प बना लेता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस प्रकार बदले और प्रतिशोध की परम्परा चलती है। अतः जहाँ क्षमा माँगने के लिए विनय की आवश्यकता है वहाँ क्षमा प्रदान करने के लिए उदारता जरूरी है। हृदय की उदारता से दूसरों के किये गये दुर्व्यवहार को भूलकर उसे गले लगाना क्षमा का दूसरा पहलू है। क्षमा याचना करना और क्षमा प्रदान करना इन दोनों पहलुओं को समेटकर अभिव्यक्ति देने वाला शब्द है 'खमत खामना'।

खेद है कि हम इस मूल शब्द के महत्व को भूल कर आजकल केवल 'मिच्छामि दुक्कडं' अथवा क्षमा याचना करता हूँ कहकर ही अपना कर्त्तव्य पूरा मान लेते हैं। 'मेरे किये गये दुष्कृत्य मिथ्या हो' अथवा 'मैं क्षमा माँगता हूँ' इन दोनों में एकांगीपन है। क्षमा माँगना एक पक्ष है और क्षमा देना दूसरा पहलू। अतः पूरी अभिव्यक्ति के लिए "खमत खामना" शब्द जरूरी है जिसमें क्षमा देने एवं माँगने दोनों ही भाव हैं।

—चन्दनमल 'चांद'

जैन जगत, सितम्बर १९९२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

अहिंसा वॉयस ।। अप्रेल-जून १९९२

इस अंक में है 'Contribution of Jainism to the Culture of Tamilnadu' (Dr. B. K. Khadabadi), 'Thoreau as a Vegetarian' (R. N. Lakhotia), 'जीवन का नैसर्गिक दर्शन : दशलक्षण धर्म' (प्रेमचन्द जैन), 'भगवान ऋषभदेव' (डॉ. कुंवरलाल जैन), 'खुलने लगे हैं स्रोत' (डॉ. नेमीचन्द जैन) ।

कथालोक ।। अगस्त, १९९२ (तीर्थयात्रा विशेषांक)

इस अंक में है 'जैन तीर्थस्थल महिमामय महावीरजी' (सुरेश सरल), 'वे विरल क्षण' (निर्मला डोसी), 'शिल्प सौन्दर्य का अनूठा कलाकेन्द्र राणकपुर' (पूरन सरमा), 'आबू की तीर्थयात्रा' (राजकुमारी बेगानी), 'नित नाम जपो श्री नाकोडा' (सोहनराज कोठारी), 'दक्षिण की काशी हम्पी' (हजारीमल बाँठिया), 'एक चमत्कारी समाधिस्थल सिरीयारी' (मुनि सुखलाल), 'आत्म-बल के प्रेरक बाहुबली' (सतीश कुमार जैन), 'ऋषभदेव और कैलाश' (गणेश प्रसाद जैन), 'एक बार वन्दे जो कोय : ताहि नरक पशु गति नहि होय' (डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया), 'सम्मेतशिखरजी' (नैनमल सुराना 'खुशदिल') ।

तुलसी प्रज्ञा ।। जुलाई-सितम्बर १९९२

इस अंक में है 'काल का स्वरूप और उसके अवयव' (डॉ. परमेश्वर सोलंकी), 'सांख्य दर्शन और गीता में प्रकृति : एक विवेचन' (डॉ. कमला पंत), 'जटासिंह नन्दि का वाराङ्ग चरित और उसकी परम्परा' (डॉ. सागरमल जैन), 'वसन्त विलास में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों का महत्व' (डॉ. केशव प्रसाद गुप्त), 'प्राकृत भाषा के कतिपय अव्यय' (डॉ. हरिशंकर पाण्डेय), 'जैन द्रव्य सिद्धान्त : परिचय और समीक्षा' (राजवीर सिंह शेखावत), 'जैन वाङ्मय में उपलब्ध लब्धियों के प्रकार' (मुनि विमल कुमार), 'संस्कृत शतक परम्परा में आचार्य विद्यासागर के शतक : एक परिचय' (डॉ. आशालता मलैया), 'तेरापंथ के आधुनिक राजस्थानी संत-साहित्यकार-३' (मुनि सुखलाल), 'A Survey of Prakrit and Jaina Studies in India and Outside' (Dr. Bhagchandra Jain 'Bhaskar').

शोधादर्श ॥ अप्रैल १९९२

इस अंक में है 'महावीर और बुद्ध' (स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन), 'मानव सभ्यता के आदि प्रस्तोता : ऋषभदेव' (डॉ. शशिकान्त जैन), 'न्याय-वैशेषिक दर्शन और जैन दर्शन में परमाणु' (डॉ. कमला पन्त), 'गोलाराड् : एक ऐतिहासिक विवेचन' (कुन्दनलाल जैन), 'गोल श्रृंगार' (रामजीत जैन), 'वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में महावीर के उपदेशों का महत्व' (डॉ. त्रिलोकीकुमार तिवारी), 'बालचन्द्र सूरि कृत वसन्त विलास महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन' (डॉ. केशव प्रसाद गुप्त)।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१.	अतिमुक्त (२य संस्करण)—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	८.००
२.	श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	३.००
३.	नीलांजना—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	१२.००
४.	चन्दन मूर्त्ति—श्री गणेश ललवानी अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी	२०.००
५.	चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया	५.००
६.	भगवान महावीर (एलबम्)	१०.००

বাংলা

১.	অতিমুক্ত	—শ্রীগণেশ লালওয়ানী	৪.০০
২.	শ্রমণ সংস্কৃতির কবিতা	—শ্রীগণেশ লালওয়ানী	৩.০০
৩.	ভগবান মহাবীর ও জৈন ধর্ম	—শ্রীপূরণচাঁদ শ্যামসুখা	২.০০

English

1.	Bhagavati Sutra (Text with English Translation) —Sri K. C. Lalwani	
	Vol. I (Satak 1-2)	40.00
	Vol. II (Satak 3-6)	40.00
	Vol. III (Satak 7-8)	50.00
	Vol. IV (Satak 9-11)	70.00
2.	The Temples of Satrunjaya —James Burgess	50.00
3.	Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha tr. by Sri Ganesh Lalwani	1.50
4.	Thus Sayeth Our Lord —Sri Ganesh Lalwani	1.50
5.	Verses from Cidananda—tr. by Sri Ganesh Lalwani	5.00

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :
BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330
Vol. XVI No. 6 **TITTHAYARA** **October 1992**
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77